वादिराजसूरि के जीवनवृत्त का पुनरीक्षण

डा० जयकुमार जैन

संस्कृत साहित्य के विशाल भण्डार के अनुशीलन से पता चलता है कि भारतवर्ष में सुरभारती के सेवक वादिराज नाम वाले अनेक विद्वान् हुए हैं। इनमें पार्श्वनाथचरित-यशोधरचरितादि के प्रणेता वादिराजसूरि सुप्रसिद्ध हैं, जो न्यायविनिश्चय पर विवरण नाम्नी टीका के भी रचयिता हैं। प्रस्तुत निबन्ध में इन्हीं वादिराज को विषय बनाया गया है। उनकी सम्पूर्ण कृतियों का भले ही विधिवत् अध्ययन न हो पाया हो, परन्तु उनके सरस एकीभावस्तोत्र से धार्मिक समाज, न्यायविनिश्चयविवरण से तार्किक समाज और पार्श्वनाथचरित-यशोधरचरितादि से साहित्यज्ञ समाज सर्वथा सुपरिचित है। जहाँ एक ओर उन्हें महान् कवियों में स्थान प्राप्त है, वहाँ दूसरी ओर श्रेष्ठ तार्किकों की पंक्ति में भी उत्तम स्थान पाने वाले हैं।

वादिराजसूरि द्राविड़ संघीय अरुंगल शाखा के आचार्य थे।[1] द्राविड़ संघ का अनेक प्राचीन शिलालेखों में द्रविड़, द्रमिड़, द्रविण, द्रविड, द्रमिल, दविल, दरविल आदि नामों से उल्लेख पाया जाता है।[2] ये नामगत भेद कहीं लेखकों के प्रमादजन्य हैं तो कहीं भाषा-वैज्ञानिक विकासजन्य। प्राचीनकाल में चेर, चोल और पाण्ड्य इन तीन देशों के निवासियों को द्राविड़ कहा जाता था। केरल के प्रसिद्ध आचार्य महाकवि उल्लूर एस० परमेश्वर अय्यर द्राविड़ शब्द का विकास मिठास या विशिष्टता अर्थ के वाचक तमिष शब्द से निम्नलिखित क्रमानुसार मानते हैं--तमिष > तमिल > दमिल > द्रमिल > द्रमिड़ > द्रविड़ > द्राविड़।[3]

महाकवि वादिराज ने किस जन्मभूमि एवं किस कुल को अलंकृत किया—इस सम्बन्ध में कोई भी आन्तरिक या बाह्य प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। यतः वादिराजसूरि द्राविड़ संघीय थे, अतः उनके दाक्षिणात्य होने की संभावना की जाती है। द्रविड़ देश को वर्तमान आन्ध्र और तमिलनाडु का कुछ भाग माना जा सकता है। जन्मभूमि, माता-पिता आदि के विषय में प्रमाण उपलब्ध न होने पर भी उनकी कृतियों के अन्त्य प्रशस्तिपद्यों से ज्ञात होता है कि वादिराजसूरि के गुरु का नाम श्री मतिसागर और गुरु के गुरु का नाम श्रीपालदेव था।[4]

१. श्रीमद्द्रविडसंघेऽस्मिन् नन्दिसंघेऽस्त्यरुंगलः।
अन्वयो भाति योऽशेषशास्त्रवारासिपारगैः॥
एकत्र गुणिनस्सर्वे वादिराज त्वमेकतः।
तस्यैव गौरवं तस्य तुलायामुन्नतिः कथम्॥
—जैन शिलालेख संग्रह भाग–२, लेखांक २८८

२. द्रष्टव्य—वही भाग ३ की डा० चौधरी द्वारा लिखित प्रस्तावना, पृ० ३३

३. द्रष्टव्य—श्री गणेश प्रसाद जैन द्वारा लिखित "दक्षिण भारत में जैन धर्म और संस्कृति" लेख 'श्रमण' वर्ष २१, अंक १, नवम्बर १९६९, पृ० १८

४. पार्श्वनाथचरित, प्रशस्तिपद्य १-४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यशस्तिलकचम्पू के संस्कृत टीकाकार श्रुतसागरसूरि ने वादिराज और वादीभसिंह को सोमदेवाचार्य का शिष्य बतलाते हुए लिखा है—"स वादिराजोऽपि श्री सोमदेवाचार्यस्य शिष्यः।" "वादीभसिंहोऽपि मदीयशिष्यः, वादिराजोऽपि मदीय शिष्यः" इत्युक्तत्वात्।[1] इसके पूर्व श्रुतसागरसूरि ने "उक्तं च वादिराजेन" कहकर एक पद्य उद्धृत किया है, जो इस प्रकार है—

कर्मणा कवलितो सोऽजा तत्पुरान्तर जनांगमवाटे।
कर्मकोद्रवरसेन हि मत्तः किं किमेत्यशुभधाम न जीवः॥[2]

यह श्लोक वादिराजसूरिकृत किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलता है और न ही अन्य ग्रंथों में ही। सोमदेवसूरि के नाम से उल्लिखित "वादीभसिंहोऽपि मदीयशिष्यः वादिराजोऽपि मदीयशिष्यः" वाक्य का उल्लेख भी उनकी किसी भी रचना (यश०, नीतिवा०, अध्यात्मतरंगिणी) में नहीं है। अतः वादिराज का सोमदेवाचार्य का शिष्यत्व सर्वथा असंगत है। यशस्तिलकचम्पू का रचनाकाल चैत्रशुक्ला त्रयोदशी शक सं ८८१ (९५९ ई०) है[3] जबकि वादिराज के पार्श्वनाथचरित का प्रणयनकाल शक सं० ९४७ (१०२५ ई०) है।[4] इस प्रकार दोनों ग्रन्थों के रचनाकाल का ६६ वर्षों का अन्तर भी दोनों के गुरु-शिष्यत्व में बाधक है।

शाकटायन व्याकरण की टीका "रूपसिद्धि" के रचयिता दयापाल मुनि वादिराज के सतीर्थ (सहाध्यायी या सधर्मा) थे। मल्लिषेणप्रशस्ति में वादिराज के सतीर्थों में पुष्पसेन और श्रीविजय का भी नाम आया है।[5] किन्तु इन दोनों का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। हुम्मच के इन शिलालेखों में द्राविड़संघ की परम्परा इस प्रकार दी गई है—

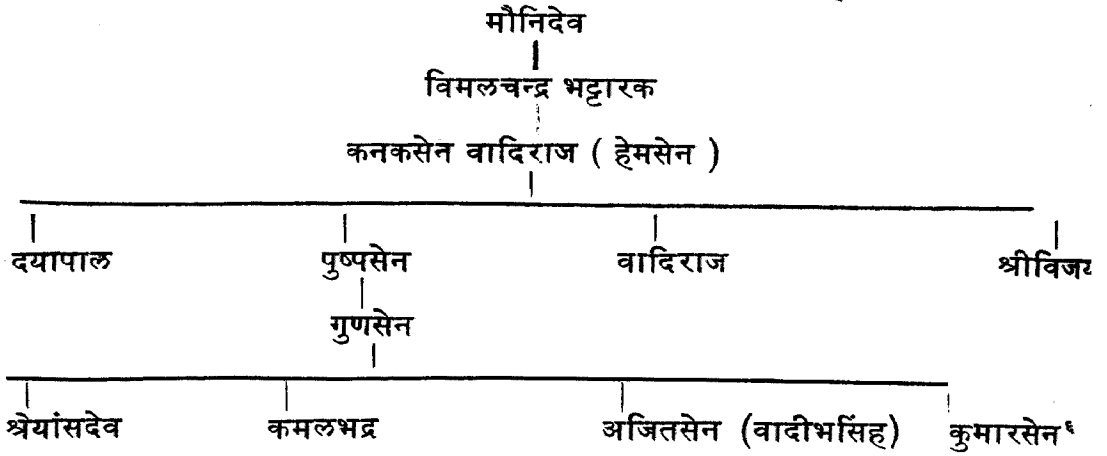

१. यशस्तिलकचम्पू (सम्पा०—सुन्दरलाल शास्त्री) क्षुतसागरी टीका, द्वितीय आश्वास, पृ० २६५
२. वही, पृ० २६५
३. शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेष्वष्टस्वेकाशीत्यधिकेषु गतेषु अंकतः सिद्धार्थसंवत्सरान्तर्गतचैत्रमासमदनत्रयोदश्याम्..... । —यशस्तिलकचम्पू, पृ० ४८।
४. पार्श्वनाथचरित, प्रशस्तिपद्य ५
५. द्रष्टव्य—जैन शिलालेख संग्रह भाग २, लेखांक २१३-२१६
६. वही भाग ३ की डा० गुलाबचन्द्र चौधरी द्वारा लिखित प्रस्तावना पृ० ३८ से उद्धृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ वादिराज के गुरु का नाम कनकसेन वादिराज (हेमसेन) कहा है और अन्यत्र मतिसागर निर्दिष्ट है। इसका समाधान यही हो सकता है कि कदाचित् मतिसागर वादिराज के दीक्षागुरु थे और कनकसेन वादिराज (हेमसेन) विद्यागुरु। श्री नाथूराम प्रेमी का भी यही मन्तव्य है।[1] साध्वी संघमित्रा जी ने वादिराज के सतीर्थ का नाम अनेक बार दयालपाल लिखा है।[2] जो संभवतः मुद्रण दोष है क्योंकि उनके द्वारा प्रदत्त सन्दर्भ मल्लिषेणप्रशस्ति में भी दयापालमुनि ही आया है।

वादिराज कवि का मूल नाम था या उपाधि--इस विषय में पर्याप्त वैमत्य है। श्री नाथूराम प्रेमी की मान्यता है कि उनका मूल नाम कुछ और ही रहा होगा, वादिराज तो उनकी उपाधि है और कालान्तर में वे इसी नाम से प्रसिद्ध हो गये।[3] टी० ए० गोपीनाथ राव ने वादिराज का वास्तविक नाम कनकसेन वादिराज माना है।[4] इसका कारण यह हो सकता है कि कीथ, विन्टरनित्ज आदि कुछ पाश्चात्य इतिहासज्ञों ने कनकसेन वादिराज कृत २९६ पद्यात्मक एवं ४ सर्गात्मक यशोधरचरित नामक काव्य का उल्लेख किया है।[5] किन्तु यह भ्रामक है। विभिन्न शिलालेखों में कनकसेन वादिराज और वादिराज का पृथक्-पृथक् उल्लेख हुआ है।[6] एक अन्य शिलालेख में जगदेकमल्ल वादिराज का नाम वर्धमान कहा गया है।[7] वादिराजसूरि द्वारा विरचित एकीभावस्तोत्र (कल्याणकल्पद्रुम) पर नागेन्द्रसूरि द्वारा विरचित एक टीका उपलब्ध होती है। टीकाकार के प्रारम्भिक प्रतिज्ञा वाक्य में स्पष्ट रूप से वादिराज का दूसरा नाम वर्धमान कहा गया है—

"श्रीमद्वादिराजापरनामवर्धमानमुनीश्वरविरचितस्य परमाप्तस्तवस्यातिगहनगंभीरस्य सुखावबोधार्थं भव्यासु जिघृक्षापारतन्त्र्यज्ञानभूषणभट्टारकैरूपरुद्धो नागचन्द्रसूरिर्यथाशक्ति छाया-मात्रमिदं निबन्धनमभिधत्ते।"[8] किन्तु यह टीका अत्यन्त अर्वाचीन है। टीका की एक प्रति झालरापटन के सरस्वती भवन में है। यह प्रति वि० सं० १६७६ (१६१९ ई०) में फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को मण्डलाचार्य यशःकीर्ति के शिष्य ब्रह्मदास ने वैराठ नगर में आत्म पठनार्थ लिखी थी।[9]

---

१. द्रष्टव्य—श्री नाथूराम प्रेमी द्वारा लिखित 'वादिराज सूरि' लेख। जैन हितैषी भाग ८ अंक ११ पृ० ५१५

२. जैन धर्म के प्रभावक आचार्य (द्वितीय संस्करण) वादिगजपंचानन आचार्य वादिराज (द्वितीय), पृ० ५७०

३. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४७८

४. इंट्रोडक्शन टू यशोधरचरित पृ० ५

५. संस्कृत साहित्य का इतिहास (कीथ, अनु०-मंगलदेव शास्त्री) पृ० ११७ एवं जैनिज्म इन दी हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—एम० विन्टरनित्ज पृ० १६

६. जैन शिलालेख संग्रह, भाग १ लेखांक ४९३

७. वही, भाग ३ लेखांक ३४७

८. द्रष्टव्य—सरस्वती भवन, झालरापाटन की हस्तप्रति का प्रारम्भिक प्रतिज्ञावाक्य

९. वही अन्त्यप्रशस्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यतः वादिराज ने पार्श्वनाथचरित की प्रशस्ति[१] तथा यशोधरचरित[२] के प्रारम्भ में अपना नाम वादिराज ही कहा है, अतः जब तक अन्य कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता है, तब तक हमें वादिराज ही वास्तविक नाम स्वीकार करना चाहिए।

वादिराजसूरि के समय दक्षिण भारत में चालुक्य नरेश जयसिंह का शासन था। इनके राज्यकाल की सीमायें १०१६-१०४२ ई० मानी जाती हैं।[३] महाकवि विल्हण ने चालुक्य वंश की उत्पत्ति दैत्यों के नाश के लिए ब्रह्मा की चुलुका (चुल्लू) से बताई है। उन्होंने चालुक्य वंश की परम्परा का प्रारम्भ हारीत से करते हुए उनकी वंशावली का निर्देश इस प्रकार किया है—मानव्य> तैलप> सत्याश्रय> जयसिंहदेव।[४] जयसिंहदेव के उत्तराधिकारी आहवमल्ल द्वारा अपनी राजधानी कल्याणनगर बसाकर उसे बनाने का उल्लेख विक्रमांकदेवचरित में किया गया है।[५] जिससे स्पष्ट होता है कि उनके पूर्व शासक की राजधानी अन्यत्र थी। पार्श्वनाथचरित की प्रशस्ति में महाराज जयसिंह की राजधानी "कट्टगातीरभूमौ"[६] कहा गया है। किन्तु दक्षिण में कट्टगा नामक कोई नदी नहीं है। हाँ, बादामी से लगभग १८-१९ किमी० दूर एक कट्टगेरी नामक स्थान जरूर है जो कोई प्राचीन नगर जान पड़ता है। ऐसा लगता है कि प्रमादवश "कट्टगेरीतिभूमौ" के स्थान पर हस्तलिखित प्रति में "कट्टगातीरभूमौ" लिखा गया है। कट्टगेरी नामक उक्त स्थान पर चालुक्य विक्रमादित्य (द्वितीय) का एक कन्नड़ी शिलालेख भी मिला है, जिससे स्पष्ट है कि चालुक्य राजाओं का कट्टगेरी स्थान से सम्बन्ध रहा है। यही कट्टगेरी जयसिंहदेव की राजधानी होनी चाहिए।

पार्श्वनाथचरित के अतिरिक्त न्यायविनिश्चयविवरण एवं यशोधरचरित की रचना भी जयसिंह की राजधानी में ही सम्पन्न हुई थी। न्यायविनिश्चयविवरण[७] में तो इसका उल्लेख किया ही गया है, यशोधरचरित में भी जयसिंह पद का प्रयोग करके बड़े कौशल के साथ इसकी सूचना दी गई है। यथा—

"व्यातन्वञ्जयसिंहतां रणमुखे दीर्घं दधौ धारिणीम्।"

"रणमुखजयसिंहो राज्यलक्ष्मीं बभार।"[८]

---

१. पार्श्वनाथचरित प्रशस्तिपद्य ४ (वादिराजेन कथा निबद्धा)

२. यशोधरचरित १/६ (तेन श्रीवादिराजेन)

३. द्रष्टव्य—कल्याणी के पश्चिमी चालुक्य वंश की वंशावली—फादर हराश एवं श्री गुजर, विक्रमांकदेवचरित भाग २ (हिन्दू वि० वि० प्रकाशन) परिशिष्ट तथा जैन शिलालेख संग्रह भाग ३ की डा० चौधरी द्वारा लिखित प्रस्तावना, पृ० ८८

४. विक्रमांकदेवचरित १|५८-७९

५. वही २/१

६. पार्श्वनाथचरित प्रशस्तिपद्य ५

७ न्यायविनिश्चय विवरण प्रशस्तिपद्य ५

८. यशोधरचरित ३/८३ एवं ४/७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी भी आन्तरिक या बाह्य प्रमाण द्वारा वादिराज का जन्म-काल ज्ञात नहीं हो सका है। परन्तु यतः उन्होंने पार्श्वनाथचरित की रचना शक सं० ९४७ कार्तिक शुक्ला तृतीया को की थी[1], अतः उनका जन्म समय ३०-४० वर्ष पूर्व मानकर ९८५-९९५ ई० के लगभग माना जा सकता है। पंचवस्ति के ११४७ ई० में उत्कीर्ण शिलालेख में वादिराज को गंगवंशीय राजा राजमल्ल (चतुर्थ) सत्यवाक का गुरु बताया गया है। यह राजा ९ ७ ई० में गद्दी पर बैठा था। समरकेशरी चामुण्डराय इसका मन्त्री था।[2] अतः वादिराज का समय इससे पूर्व ठहरता है। इन आधारों पर वादिराज का समय ९५०-१०५० ई० के मध्यवर्ती मानने में कोई असंगति प्रतीत नहीं होती है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने पार्श्वनाथचरित का प्रणयन सिंहचक्रेश्वर चालुक्यचक्रवर्ती जयसिंहदेव की राजधानी में शक सं० ९६४ में किया है।[3] उनका यह कथन पार्श्वनाथचरित के नग=सात वार्धि=चार और रन्ध्र=नव की विपरीत गणना (अंकानां वामा गतिः) ७४७ शक सं० विरुद्ध, अतएव असंगत है। एक और बिचित्र बात देखने में आई है कि डा० हीरालाल जैन जैसे सप्रसिद्ध विद्वान् ने भी वादिराज को कहीं दसवीं, कहीं ग्यारहवीं और कहीं-कहीं तेरहवीं शताब्दी तक पहुँचा दिया है। डा० जैन ने यशोधरचरित का उल्लेख करते हुए १०वीं शताब्दी[4], एकीभावस्तोत्र के प्रसंग में ११वीं शताब्दी[5] पार्श्वनाथचरित के सम्बन्ध में भी ११वीं शताब्दी[6], तथा न्यायविनिश्चयविवरण टीका के उल्लेख में १३वीं शताब्दी[7] का समय वादिराज के साथ लिखा है। स्पष्ट है कि वादिराजसूरि का १३वीं शती में लिखा जाना या तो मुद्रणगत दोष है अथवा डा० जैन ने काल-निर्धारण में पार्श्वनाथ-चरित की प्रशस्ति का उपयोग नहीं किया है तथा पूर्वापरता का ध्यान रखे बिना एक ही व्यक्ति को १० वीं से १३ वीं शताब्दी तक स्थापित करने का विचित्र प्रयास किया है।

अनेक शिलालेखों तथा अन्यत्र वादिराजसूरि की अतीव प्रशंसा की गई है। मल्लिषेण-प्रशस्ति में अनेक पद्य इनकी प्रशंसा में लिखे गये हैं। यह प्रशस्ति १०५० शक सं० (११२८ ई०) में उत्कीर्ण की गई थी जो पार्श्वनाथवस्ति के प्रस्तरस्तम्भ पर अंकित है। यहाँ वादिराज को महान् कवि, वादी और विजेता के रूप में स्मरण किया गया है। एक स्थान पर तो उन्हें जिनराज के समान तक कह दिया गया है।[8] इस प्रशस्ति के "सिंहसमर्च्यपीठविभवः"

---

१. शाकाब्दे नगवार्धिरन्ध्रगणने ··· ··· ··· । पार्श्वनाथचरित, प्रशस्तिपद्य ५

२. द्रष्टव्य—"एकीभावस्तोत्र" की परमानन्द शास्त्री द्वारा लिखित प्रस्तावना पृ० ४ एवं नाथूराम प्रेमी का "वादिराजसूरि" लेख, जैनहितैषी भाग ८ अंक ११ पृ० ५११

३. संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रथम भाग, काव्य खण्ड, पंचम परिच्छेद पृ० २४५

४. भारतीय संस्कृति के विकास में जैनधर्म का योगदान पृ० १७१

५. वही, पृ० १२६

६. वही, पृ० १८८

७. वही, पृ० ८९

८. त्रैलोक्यदीपिका वाणी द्वाभ्यामेवोद्गादिह । जिनराजत एकस्मादेकस्माद् वादिराजतः ॥
—जैनशिलालेख संग्रह भाग—१, लेखांक ५४, मल्लिषेणप्रशस्ति, पद्य ४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषण से ज्ञात होता है कि महाराजा जयसिंह द्वारा उनका आसन पूजित था। इतने कम समय में इतनी अधिक प्रशंसा पाने का सौभाग्य कम ही कवियों अथवा आचार्यों को मिला है।

काव्य पक्ष की अपेक्षा वादिराजसूरि का तार्किक (न्याय) पक्ष अधिक समृद्ध है। आचार्य बलदेव उपाध्याय की यह उक्ति कि "वादिराज अपनी काव्य प्रतिभा के लिए जितने प्रसिद्ध हैं उससे कहीं अधिक तार्किक वैदुषी के लिए विश्रुत हैं।"[१] सर्वथा समीचीन जान पड़ती है। यही कारण है कि एक शिलालेख में वादिराज को विभिन्न दार्शनिकों का एकीभूत प्रतिनिधि कहा गया है—

"सदसि यदकलंक कीर्तने धर्मकीर्तिः
वचसि सुरपुरोधा न्यायवादेऽक्षपादः।
इति समयगुरुणामेकतः संगतानां
प्रतिनिधिरिव देवो राजते वादिराजः॥[२]

अन्यत्र वादिराजसूरि को षट्तर्कषण्मुख, स्याद्वादविद्यापति, जगदेकमल्लवादी उपाधियों से विभूषित किया गया है।[३] एकीभावस्तोत्र के अन्त में एक पद्य प्राप्त होता है जिसमें वादिराज को समस्त वैयाकरणों, तार्किकों एवं साहित्यिकों एवं भव्यसहायों में अग्रणी बताया गया है।[४] यशोधरचरित के सुप्रसिद्ध टीकाकार लक्ष्मण ने उन्हें मेदिनीतिलक कवि कहा है।[५] भले ही इन प्रशंसापरक प्रशस्तियों और अन्य उल्लेखों में अतिशयोक्ति हो पर इसमें सन्देह नहीं कि वे महान् कवि और तार्किक थे।

वादिराजसूरि की अद्यावधि पाँच कृतियाँ असंदिग्ध हैं—(१) पार्श्वनाथचरित, (२) यशोधरचरित, (३) एकीभावस्तोत्र, (४) न्यायविनिश्चयविवरण और (५) प्रमाण निर्णय। प्रारम्भिक तीन साहित्यिक एवं अन्तिम दो न्याय विषयक हैं। इन पाँच कृतियों के अतिरिक्त श्री अगरचन्द्र नाहटा ने उनकी त्रैलोक्यदीपिका और अध्यात्माष्टक नामक दो कृतियों का और उल्लेख किया है।[६] इनमें अध्यात्माष्टक भा०दि० जैन ग्रन्थमाला से वि० १७७५ (१७१८ ई०) में प्रकाशित भी हुआ था। श्री परमानन्द शास्त्री इसे वाग्भटालंकार के टीकाकार वादिराज

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास, भाग १, पंचम परिच्छेद, पृ० २४५
२. जैनशिलालेख संग्रह भाग २, लेखांक २१५ एवं वही भाग ३ लेखांक ३१९
३. जैन शिलालेख संग्रह भाग २, लेखांक २१३ एवं भाग ३ लेखांक ३१५
४. वादिराजमनुशाब्दिकलोको वादिराजमनुतार्किकसिंहाः।
वादिराजमनुकाव्यकृतस्ते वादिराजमनुभव्यसहायाः॥ एकीभाग, अन्त्य पद्य
५. वादिराजकविं नौमि मेदिनीतिलकं कविम्।
यदीय रसनारंगे वाणी नर्तनमातनीत्॥ यशोधरचरित, टीकाकार का मंगलाचरण
६. श्री अगरचन्द्र नाहटा द्वारा लिखित "जैन साहित्य का विकास" लेख। जैन सिद्धान्त भास्कर भाग १६ किरण १ जून ४९ पृ० २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की कृति मानते हैं।[१] "त्रैलोक्यदीपिका नामक कृति उपलब्ध नहीं है। मल्लिषेण प्रशस्ति के त्रैलोक्यदीपिका वाणी द्वाभ्यामेवोद्गादिह। जिनराजत एकस्मादेकस्माद् वादिराजतः॥"[२] में कदाचित् इसी त्रैलोक्यदीपिका का संकेत किया गया है। श्री नाथूराम प्रेमी ने लिखा है कि सेठ माणिकचन्द्र जी के ग्रन्थ रजिस्टर में त्रैलोक्यदीपिका नामक एक अपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें प्रारम्भ के १० और अन्त में ५८ पृष्ठ के आगे के पन्ने नहीं हैं।[३] सम्भव है यही वादिराजकृत त्रैलोक्यदीपिका हो। विद्वद्रत्नमाला में प्रकाशित अपने एक लेख में प्रेमी जी ने एक सूचीपत्र के आधार पर वादिराजकृत चार ग्रन्थों—वादमंजरी, धर्मरत्नाकर, रुक्मणीयशोविजय और अकलंकाष्टकटीका का उल्लेख किया है।[४] किन्तु मात्र सूचीपत्र के आधार पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

इस प्रकार वादिराजसूरि के परिचय, कीर्तन एवं कृतियों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि वे बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न कवि एवं आचार्य थे। वे मध्ययुगीन संस्कृतसाहित्य के अग्रणी प्रतिभू रहे हैं तथा उन्होंने संस्कृत के बहुविध भाण्डार को नवीन भावराशियों का अनुपम उपहार दिया है। उनके विधिवत अध्ययन से न केवल साहित्य अपितु सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय का गौरव समृद्धतर होगा।

प्रवक्ता संस्कृत विभाग
एस०डी० स्नातकोत्तर कालेज
मुजफ्फरनगर (यू० पी०)

---

१. एकीभावस्तोत्र, प्रस्तावना, पृ० १६
२. जैन शिलालेख संग्रह, भाग १, लेखांक ५४, प्रशस्तिपद्य ४०
३. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४०४
४. विद्वद्रत्नमाला में प्रकाशित हिन्दी लेख का पार्श्वनाथचरित के प्रारम्भ में संस्कृत में वादिराजसूरि का परिचय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org